विनायकी को श्रद्धासुमन

गज त्यागो तुम, नर में प्रतीति

तुम पूजित थे अब तक जग में ।
तुम राजित थे हर ऋत मग में ।
तुम थे उत्सव शोभा अब तक ।
है याद हमें घंटा रव तक ।
तुम सजे हुए मालाओं से ।
तुम घिरे बाल बालाओं से ।

पथ पर तव लीला युक्त गमन ।
करते अंगीकृत पुरुष नमन ।
देते आशिष कर उच्च स्वकर ।
होता तव स्वर सब ओर मुखर ।
श्रृद्धा में होता मिश्रित भय ।
नारियां बोलतीं थीं तव जय ।

अब बदल गई है मनुज रीति ।
गज त्यागो तुम नर में प्रतीति ।। 1 ।।

तुम शुद्धि बुद्धि के दिव्य रूप ।
तुम गरिमा के अनुपम स्वरूप ।
रूपाकृति अनुपम अप्रतिम छवि ।
वर्णन अक्षम है अब के कवि ।
तुम आकृति में बल में विशाल ।
धारते समुन्नत दीर्घ भाल ।

बहुश्रवण हेतु अति दीर्घ कर्ण ।
धारा है तुमने धरा वर्ण ।

बलवान अहिंसक हो सकता
दृष्टांत न तव यह खो सकता ।
तरुजात खाद्य पर विनिर्वाह
कर दिखा रहे जग को सुराह ।

तुमसे न लोक को रही भीति ।
गज त्यागो तुम नर में प्रतीति ।। 2 ।।

जो हैं स्वजाति के भी भक्षक
होंगे क्या अन्यों के रक्षक ।
अब साधु हुए सारे साधन ।
अर्जित करना है केवल धन ।
अब दुष्कृत्यों से क्या ब्रीडा ।
अब हर्षद अन्यों की पीड़ा ।

सब देख रहे हैं मरण चित्र ।
धर रूप प्रकट नरता विचित्र ।
अब पीड़ा है बस समाचार ।
हो चुकी वेदना निराकार ।
अब क्या संभावित जग में शम ।
जब अनघ पा रहे अरति विषम ।

बन गई मृत्यु है नवल गीति ।
त्यागो गज तुम नर में प्रतीति ।। 3 ।।

अब मानव को बस काम्य दंत ।
करने को उद्यत जीव अंत ।
थे श्री आकर जो श्वेत रदन ।
जिनसे दिखता तव भव्य वदन ।

वे बने आज संकट कारण ।
नव युग है समझो तुम वारण ।

अब सहज न बल शोभा दर्शन ।
हरने को बैठे उत्सुक जन ।
तुम रदन स्वयं के कर गोपित
उग्रता करो मन आरोपित ।
रजनीचर मनुज रूप धारी
पाएं भय और त्रास भारी ।

इसमें न द्विरद कुछ भी अनीति ।
त्यागो गज तुम नर में प्रतीति ।। 4 ।।

फिर भी मन में लघु आशा है ।
बदली निसर्ग की भाषा है ।
चल लिया बहुत नर है विरुद्ध ।
अब दिखती ईषत प्रकृति क्रुद्ध ।
अब सह्य नहीं नरकृत अपकृत ।
ले रही प्रकृति लगती शुभ व्रत ।

जब कर देगी यह दूर विकृति ।
रुद्धा होगी नरकृत अपकृति ।
यद्यपि अमेय होगी कटु क्षति ।
नर कर्मों की होगी शुभ यति ।
है नहीं अपेक्षित अभी प्रलय ।
मानव दुष्कृत का बस शुभ लय ।

परिवर्तन नव, अनघा प्रणीति ।
धारो गज तुम प्रभु में प्रतीति ।। 5 ।।

मानव और में दहकता अनल ।
नित काम कोप का दावानल ।
बहुतेरे नर हैं अग्निवदन ।
संतप्त कर रहे उज्वल मन ।
है लोभ द्रोह का चित्रभान ।
है ईर्ष्या का दीपित कृषानु ।

पर तुम हो शांत और शीतल ।
तुमसे पावन यह जगती तल ।
तुमसे ना सहय मुख में पावक ।
थी अरति तुम्हारी उर्द्रावक ।
सहते कैसे तुम मनुज नहीं ।
लड़ते कैसे तुम दनुज नहीं ।

ढह गई दीर्घ भी तव काया ।
फिर जीत गई मानव माया ।
है छल माया असुरों का बल ।
उनको न आत्मबल का संबल ।
मानव कृति भी यह नित प्रयुक्त ।
गज तुम कैसे रहते विमुक्त ।

है किसे न नर से त्रास भीति ।
त्यागो गज तुम नर में प्रतीति ।। 6 ।।

यदि दीर्घ मनोहर बल आकर ।
यदि काम न आया करि तव कर ।
तो नियति मिटा सकते क्या नर ।
जिनके कर साधन पर निर्भर ।

जितकाल न यदि तव दीर्घ रदन ।
लघुदंत मनुज धृत जीर्ण वसन ।
प्रतिकार करेगा क्या यम का ।
जिसने पथ त्यागा संयम का ।

पर हंत ! न उसको अभी भान ।
वह बरत रहा स्वामी समान ।
पर बदल रही संतति करवट ।
सब नहीं यहां पर अक्षय वट ।

है किसे न जग में काल भीति ।
त्यागो गज तुम नर में प्रतीति ।। 7 ।।

छोड़े नर ने क्या हैं अरण्य ।
रह गई प्रकृति क्या अब शरण्य ।
सब प्रणिजात का क्षेत्र छीन ।
बन रहा मनुज अतिशय प्रवीण ।
हैं विकल सत्व नर भी अशांत ।
क्या उन्नति का है यही अंत ।

बन जाए भू दुख का निशांत ।
क्या यही मनुज को रहा कांत ।
यदि उत्कर्षों का यह फल है
तो मति उद्यमिता निष्फल है ।
सुख की अभिलाषा है मरुजल ।
यदि उदित मात्र दुख का दलदल ।

यह सुखाभास, मिथ्या प्रतीति ।
त्यागो गज तुम नर में प्रतीति ।। 8 ।।

तुम नहीं अकेले दुख भागी ।
नर परपीड़न का अनुरागी ।
सब भूत वर्ग पा रहा कष्ट ।
है वसुधा का श्रृंगार नष्ट ।
सब सुख बसते अब कंचन में ।
अब मानव रति केवल धन में ।

नर ही नर का कर रहा दलन ।
शोषण है मोषण और दमन ।
है यद्यपि खड़े विशाल भवन ।
लघुतर होता जाता नर मन ।
गति है, मति है, कृति है, रति है
सर्वत्र दीखती पर क्षति है ।

क्यों व्यर्थ सिद्ध होती अधीति ।
गज त्यागो तुम नर में प्रतीति ।। 9 ।।

आना था तुमसे नव जीवन ।
पर बने द्वेष्य पातकी गहन ।
आता यदि भू पर तव शावक ।
था कौन यहां पर अभिभावक ।
जग में आकर वह क्या पाता ।
पीड़ा से चिर रहता नाता ।

अब कहां रही उर्वरा प्रकृति ।
खा गई उसे भी मनुज निकृति ।
अब नहीं प्रकृति की रम्य क्रोड ।
भव्यता गई है धरा छोड़ ।
कितना नाशक लोभी का बल ।
चल रहा नियति का घातक छल ।

मानव अब सबसे बड़ी ईति ।
गज त्यागो तुम नर में प्रतीति ।। 10 ।।

बलिदान न तव जाए निरर्थ ।
सब जानें जीवन परम अर्थ ।
फिर बहे न नैनों से दृग जल ।
हो जाए नर का चित्त विमल ।
प्रकटें लख तव लोहित रिसाव ।
जो दबे गहन नर भव्य भाव ।

है मरी न अब तक मानवता ।
क्षण को छाई है दानवता ।
बहु हृदय तुम्हारे हित सकरुण ।
तुम चले गए हो बहुत तरुण ।
व्यापक यदि हो जाए करुणा ।
झट ज्ञान रश्मि फैले अरुणा ।

नर की सत्वों से जुड़े प्रीति ।
गज हो जग में यह नव्य नीति ।। 11 ।।

- शिव कुमार मिश्र
कानपुर
14-06-2020